THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-03-17

Disputes of faith beyond the court

The Supreme Court is right to advise parties to the Ram Janmabhoomi dispute to find an out-of-court settlement. When politicians toss hot potatoes to the court, it is not obliged to catch them. When a complex legal principle is at stake, the Supreme Court has a role to play. When it is a matter of sifting evidence, there is little reason for the matter to go beyond a high court. And when the problem is something that is not amenable to adjudication, the courts should simply refuse to get involved. The Kerala High Court has, indeed, a healthy precedent of asking two quarrelling Christian denominations to settle their spiritual dispute on their own.

The Babri Masjid demolition is a criminal case that still drags on without conclusion. Who owns the land on which the demolished mosque stood is a property dispute that involves no legal principle. The high court could well have settled the matter. But determining ownership of the piece of land on which a 16th-century mosque stood would not resolve the dispute, at whose core is amatter of faith. Many people believe that Lord Ram was born at that exact site, and deem it appropriate that a temple should be built in his honour right at that place. Playing on this sentiment, the Sangh Parivar launched a campaign in the mid-1980s to demolish the mosque, which task was accomplished in 1992Even if the property dispute is settled, on the basis of evidence, in favour of the Babri Masjid Action Committee, it does not mean that an amicable solution cannot be found. That solution would have to be on the basis of generosity and accommodation, not a legal mandate. The court errs in offering to be part of the mediation process. The state should not be a party to mediation over religious sentiments. Leave the parties to see sense on their own.

दैनिक भास्कर

Date: 22-03-17

सिंधु जल संधि की चर्चा में दांव पर पर्यावरण

जब विश्व जल दिवस की पूर्व संध्या पर 20-21 मार्च को भारत और पाकिस्तान का स्थायी सिंधु जल आयोग इस्लामाबाद में अपनी 113वीं बैठक के लिए मिल रहा है तो बहुत कुछ दांव पर लगा हुआ है। फिर तात्कालिक मुद्दे और सिंधु जल संधि तो है ही। दोनों पड़ोसी देशों के बीच सिंधु जल संधि एक उज्ज्वल पहलू रहा है और यह संधि बार-बार उन्हें बातचीत की मेज पर ले आती है। यह साझा नदी का जादू है!दोनों देशों के बीच 1960 की संधि के तहत गठित स्थायी सिंधु आयोग में सूचनाएं साझा करने और सहयोग करने व परस्पर चर्चा की संस्थागत व्यवस्था है। इसके अलावा इसमें सवालों, मतभेदों और विवादों को हल करने के साधन भी मौजूद हैं और विश्वबैंक की भी स्थायी भूमिका है। 1960 के पहले के वर्षों में विश्व बैंक और अमेरिकी सरकार ने भूमिका निभाई और ऐसा लगता है कि मौजूदा बैठक में भी उनका हाथ रहा है।

सिंधु जल संधि भारत को तीन पूर्वी नदियों रावी, ब्यास और सतलज के पानी का इस्तेमाल करने का अबाधित अधिकार देती है, जबकि तीन पश्चिमी नदियों को लेकर सिंचाई, पनबिजली और जल-संग्रह को लेकर मर्यादा बांधती है। इस संधि को दुनिया की सबसे सफल अंतरराष्ट्रीय संधियों में गिना जाता है। अब यह बैठक लगभग दो साल बाद हुई है, क्योंकि उरी और पठानकोट हमलों के बाद जुलाई 2016 में होने वाली बैठक रद्द हो गई थी। तब प्रधानमंत्री का यह बयान चर्चा में था कि खून और पानी साथ में नहीं बह सकते।

इस बीच भारत के कश्मीर स्थित चिनाब पर 850 मेगावॉट रातले हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट और झेलम बेसिन पर 330 मेगावॉट किशनगंगा हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट पर पाकिस्तान द्वारा उठाए सवाल अब पाक की नज़र में विवाद है, जबकि भारत इसे मतभेद कहता है। इसलिए भारत ने विश्व बैंक से एक तटस्थ विशेषज्ञ की नियुक्ति करने को कहा है, जैसा कि मतभेद सुलझाने के लिए संधि के तहत प्रावधान है, जबकि पाकिस्तान चाहता है कि विश्वबैंक दोनों प्रोजेक्ट पर 'विवाद' के हल के लिए हस्तक्षेप न्यायालय गठित करे। अब इस्लामाबाद में हुई मौजूदा वार्ता के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि सचिव स्तरीय (इस्लामाबाद में मौजूदा बातचीत आयुक्त स्तरीय है) बातचीत विश्व बैंक के तत्वावधान में वाशिंगटन में 11 से 13 अप्रैल 2017 के बीच होगी ताकि इन दोनों प्रोजेक्ट पर आगे का रास्ता निकाला जा सके।

इधर, पाकिस्तान ने तीन और प्रोजेक्ट- कश्मीर की चिनाब तराई में पकलदुल (1000 मेगावॉट) और 48 मेगावॉट लोअर कलनाई प्रोजेक्ट और हिमाचल प्रदेश में चिनाब की सहायक नदी पर 120 मेगावॉट का मियार प्रोजेक्ट- पर सवाल उठाए हैं। मौजूदा बैठक में पाकिस्तान ने इन परियोजनाओं के डिज़ाइन मांगे हैं और भविष्य में वह इन पर सवाल उठा सकता है। समाचार माध्यमों में भारत के 1856 मेगावॉट के सावलकोट हाइड्रोपावर प्रोजेक्ट के असर की चर्चा है। इसे 16 मार्च 2017 को मंजूरी दी गई है। रिपोर्टों में सवाल उठाए गए हैं कि क्यों भारत कश्मीर घाटी में क्वार, किरु, बुरुसर, किरथाई एक व दो, सावलकोट सहित अन्य कई परियोजनाओं को आगे बढ़ाने की जल्दबाजी मचा रहा है। कड़ा रुख रखने वाले कुछ लोग अतार्किक रूप से भारत के जल संकट को सिंधु जल-संधि से जोड़कर इसे खत्म करने का आह्वान करते हुए इसे भारत के लिए बोझ बता रहे हैं, वे निश्चय ही गलत दिशा में संकेत कर रहे हैं।

मौजूदा बैठक के लिए सिंधु स्थायी समिति के सामने एक रोचक एजेंडा पाकिस्तान का वह प्रस्ताव है, जिसमें सिंधु की सहायक नदियों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर निगरानी रखने का प्रस्ताव है। संधि के एनेक्सचर जी के पैरा 29 में यह अंतरराष्ट्रीय सहमतियों व कानूनों का उल्लेख है, जिन्हें इस संदर्भ में लागू किया जा सकता है। जलवायु परिवर्तन का असर इन नदियों पर पहले ही दिखाई दे रहा है। निश्चय ही इस बारे में स्थिति पर निगरानी करने और सूचनाएं साझा करने का दोनों देशों को फायदा मिलेगा। निश्चित ही इस प्रस्ताव का स्वागत कर इस पर जल्दी पहल करनी चाहिए।

सिंधु घाटी में पाकिस्तान के सामने कई मुद्दे हैं, जिनका संबंध संधि के तहत उसे मिलने वाली विशाल जलराशि के कुप्रबंधन से है। पाकिस्तान में इस नदी के अंतिम छोर पर मौजूद सिंध के लोगों ने ऊपरी भाग मौजूद पाकिस्तानी इलाकों से अधिक पानी की मांग करते हुए 1 से 14 मार्च तक मोर्चे निकाले थे। भूतकाल में पाकिस्तान ने भारतीय परियोजनाओं पर विवाद उठाए हैं और उसे अगले स्तर पर भी ले गया है। जैसे बगलिहार प्रोजेक्ट को वह तटस्थ विशेषज्ञ के स्तर पर, जबकि किशनगंगा प्रोजेक्ट को वह हस्तक्षेप न्यायालय में ले गया था। इन दोनों मामलों में विवाद निवारण तंत्र पाकिस्तान की दलीलों से सहमत नहीं हुआ, जिसमें कहा गया था कि ये संधि का उल्लंघन हैं और इसलिए इन्हें अनुमति नहीं दी जानी चाहिए लेकिन, दोनों मामलों में भारत से संरचना और संचालन संबंधी बदलाव करने को ही कहा गया। यहां मीडिया को अधिक संतुलित रवैया अपनाने की जरूरत है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि सिंधु बेसिन में हम जो भी प्रोजेक्ट लाएं उसके पर्यावरण संबंधी,

सामाजिक और आपदा प्रभाव का पूरा आकलन करें और यदि एकाधिक प्रोजेक्ट हों तो हमें उनके सम्मलित प्रभाव का आकलन करना चाहिए।आज यदि हम भारत में ऊर्जा परिदृश्य पर दृष्टि डालें तो पाएंगे कि हमारे पास सरप्लस बिजली है, मांग की कमी के कारण थर्मल प्रोजेक्ट का प्लांट लोड फैक्टर नीचे जा रहा है, बिजली के आदान-प्रदान के मामले में दरें बहुत कम हो गई हैं। बिजली के इस्तेमाल की दक्षता बढ़ रही है, जो और भी बढ़ सकती है। बड़े पैमाने पर सौर व पवन बिजली के विकल्प खुल रहे हैं, जिनसे बड़ी मात्रा में और किफायती दरों पर बिजली मिल सकती है। हिमालय के नाजुक पर्यावरण में हमारे नदियों, वनों और जैव विविधता को संरक्षण की जरूरत है तो हमें खासतौर पर सिंधु घाटी और आमतौर पर पूरे हिमालय में इतने सारे प्रोजेक्ट जल्दबाजी में लाने की जरूरत ही नहीं है। उधर, प्रभाव के आकलन, सलाह-मशविरा, आकलन, कार्यपालन और विकल्पों के आकलन में इतना कुछ बाकी है कि जम्मू-कश्मीर, हिमाचल और शेष भारत के लोगों के हित में बिजली परियोजनाओं में जल्दबाजी नहीं मचानी चाहिए।

हिमांशु ठक्कर (लेखक के अपने विचार हैं)

Date:22-03-17

सुप्रीम कोर्ट के सुझाव के बाद गरमाएगा मंदिर मुद्दा

भारतीय लोकतंत्र हिंदुत्व की योजना में उलझ गया है और उसके प्रमाण बार-बार उपस्थित हो रहे हैं। सबसे ताजा प्रमाण सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की यह टिप्पणी है कि राम मंदिर का विवाद दोनों पक्ष अदालत के बाहर बैठकर सुलझाएं और वे इसमें मदद करेंगे। उन्होंने इसके लिए 31 मार्च तक का समय भी दिया है।

अदालत की यह टिप्पणी भाजपा नेता और याचिकाकर्ता सुब्रह्मण्यम स्वामी के माध्यम से सामने आई है और इसका अयोध्या आंदोलन के सभी समर्थकों ने स्वागत किया है, जिनमें उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ भी शामिल है। किंतु अदालत के सुझाव पर मुस्लिम समुदाय विभाजित है। जहां ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के प्रतिनिधि जफरयाब जिलानी ने कहा है कि उन्हें अदालत से बाहर होने वाला समझौता मंजूर नहीं है, वहीं जामा मस्जिद के इमाम मौलाना अहमद बुखारी ने अदालत से बाहर पहल का स्वागत किया है लेकिन, मामला इतना ही नहीं है।अदालत की इस टिप्पणी के साथ यह कहने का सिलसिला बढ़ गया है कि अयोध्या में राम मंदिर था। बल्कि सुब्रहमण्यम स्वामी ने तो यहां तक कहा है कि अगर मस्जिद बनाई जानी है तो उसे सरयू के उस पार बनाया जाना चाहिए। इस पूरी बहस में सबसे बड़ी बात सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश का यह कहना है कि मामला धर्म और आस्था का है। इससे इस विवाद में न तो इतिहास का प्रश्न कहीं बचता है और न ही कानून के तहत तय होने वाले मालिकाना हक का। इससे लगता है कि कानून के लिहाज से काम करने वाला सुप्रीम कोर्ट अपने को कहीं लाचार भी पा रहा है।

अगर इस मामले का फैसला मालिकाना हक के कानून के लिहाज से होता है तो इस बात की गारंटी नहीं है कि हिंदुओं की आस्था और धार्मिक विश्वास संतुष्ट हो और अगर बाहर समझौता होता है तो आशंका है कि मुस्लिम समाज अपने साथ अन्याय महसूस करे। जाहिर है इस मामले पर राजनीतिक स्तर पर सुलह का प्रयास भी चल रहा होगा। वह प्रयास कितना सफल होता है यह अभी देखा जाना है।किंतु विकास के नाम पर देश और उत्तर प्रदेश का चुनाव जीतने के बाद भाजपा ने जिस तरह राम मंदिर और हिंदुत्व को प्रकट रूप से मुद्दा बनाया है उससे लगता है कि आने वाले समय में विकास और हिंदुत्व का संयुक्त पैकेज देने की कोशिश चलेगी अब देखना है कि लोकतंत्र इसे कितना सह पाएगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-03-17

जलवायु के अनुकूल विकास की तलाश खतरे से करेगी दूर

एक बड़ा और खूंखार भेडिय़ा आएगा। वैश्विक जलवायु परिवर्तन को लेकर चल रही चर्चाओं को यह धारणा प्रभावित करती रही है। उत्सर्जन में कटौती के लिए उठाए जाने वाले कदमों को लेकर सारी दुनिया लुका-छिपी का रवैया अपनाए हुए है। उत्सर्जन स्तर में कटौती संबंधी वैश्विक समझौतों को इस तरह तैयार किया गया है कि वे जलवायु परिवर्तन को नकारने वाले तत्त्वों को ही संतुष्ट कर रहे हैं। पेरिस में जुटे देशों ने एक ऐसे कमजोर और महत्त्वाकांक्षा-रहित समझौते पर रजामंदी जताई थी कि जलवायु परिवर्तन पर काबू पाना मुश्किल है। दरअसल पेरिस सम्मेलन को लगा था कि ज्यादा सख्त कदम उठाने से अमेरिका नाराज हो सकता है।नतीजा यह हुआ कि अमेरिका ने विश्व को जलवायु परिवर्तन से संबंधित नियमों एवं समझौतों में बदलाव के लिए बाध्य कर दिया। जब दुनिया ने एक कमजोर और महत्त्वहीन सौदे को अंतिम रूप दिया तो अमेरिका ऐन वक्त पर उससे अलग हो गया। अमेरिकी सरकार ने घरेलू स्तर पर नागरिक समाज और मीडिया की सशक्त आवाज को अनसुना करते हुए यह कदम उठाया। इसके पीछे ऐसे बहाने बनाए गए थे कि अमेरिकी संसद इसे स्वीकृति नहीं देगी।रियो डि जनेरियो में वर्ष 1992 में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एक नि:शक्त समझौते पर सहमति बनी थी तो उसमें कोई लक्ष्य नहीं रखा गया था और कोई कार्य योजना भी नहीं बनी थी। ऐसा अमेरिका को इस समझौते की जद में लाने के लिए किया गया था लेकिन वह उससे बाहर निकल गया। उसके बाद क्योटो प्रोटोकॉल आया जो उत्सर्जन मानकों को कम करने का पहला और इकलौता प्रारूप था। दिसंबर 1997 में एक बार फिर बिल क्लिंटन और अल गोर के दौर में समझौते को पूरी तरह निकम्मा बना दिया गया। उस समय समझौता अनुपालन प्रावधानों को हटा दिया गया और उसके स्थान पर सस्ते उत्सर्जन मानक जोड़े गए। एक बार फिर मकसद अमेरिका को इस समझौते के दायरे में लाने का था लेकिन इस बार भी अमेरिका ने उसे नकार दिया।

उसके बाद अमेरिका में बराक ओबामा का दौर आया जिन्होंने शुरू में जलवायु परिवर्तन की दिशा में ठोस कदम उठाने का भरोसा दिलाया था। लेकिन अमेरिका ने क्या किया? अमेरिका ने जलवायु परिवर्तन समझौते को इस तरह लिखने के लिए बाध्य कर दिया कि उसमें लक्ष्य वैज्ञानिक मानकों पर न होकर स्वैच्छिक कदमों पर आधारित थे। हरेक देश को अपने हिसाब से लक्ष्य तय करने की छूट दी गई। इससे आवश्यक कदम उठाने में कमजोरी आई है। ऐसा नहीं लगता है कि धरती के तापमान में बढ़ोतरी को 2 डिग्री सेल्सियस के भीतर भी सीमित रखा जा सकेगा, 1.5 डिग्री सेल्सियस तो बहुत दूर की बात है। एक बार फिर यह उन अमेरिकी नागरिकों के लिए किया गया जिनका कहना है कि वह कोई भी ऐसा समझौता स्वीकार नहीं करेंगे जिसमें बाध्यकारी प्रावधान हों। पेरिस समझौते ने बुनियादी तौर पर देशों की जवाबदेही को बहुत कम कर दिया है और स्वाभाविक न्याय को भी तिलांजलि दे दी गई है।

सशक्त और समृद्ध देशों की तरफ से उठाए जाने वाले असरदार और गंभीर कदमों की जरूरत का अहसास कर पाने में भी हम चूक कर गए। इसी तरह उत्सर्जन स्तर को भी इस तरह कम किया जाए कि जीवनशैली बदलने पर बढऩे वाले उपभोग से उत्सर्जन बढ़ न पाए। इन उपायों को आजमाने को लेकर दुनिया ने अपनी जबान पर इस वजह से काबू रखा है कि अनिच्छुक लोगों को भी इसके दायरे में लाया जा सके। ऐसे लोगों की तुलना कहावतों में मशहूर भेडिय़े से होती रही है। लेकिन अब तो यह खूंखार भेडिय़ा सत्ता में आ चुका है तब यह दुनिया क्या करेगी? निस्संदेह डॉनल्ड ट्रंप का व्यक्तित्व काफी स्याह पक्षों को भी समेटे हुए है। वह तो जलवायु परिवर्तन की असलियत को ही नकारते रहते हैं। वह इस बात को भी लेकर आश्वस्त हैं कि अमेरिका को अधिक कोयला खनन करने, अधिक बिजली संयंत्र बनाने की जरूरत है ताकि

उत्पादन बढ़ाया जा सके। लेकिन इन सभी कदमों से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ेगा।लाख टके का सवाल यह है कि अब हमें क्या करना है? लगातार बदलते मौसम से साबित होता है कि जलवायु परिवर्तन घटित हो रहा है। इसका सर्वाधिक असर दुनिया भर के सबसे गरीब लोगों पर पड़ रहा है जबकि उत्सर्जन बढ़ाने में उनका सबसे कम योगदान है। ऐसी स्थिति में दुनिया क्या गलत को गलत कहने का साहस दिखाएगी? या फिर निरर्थक निषेध में लग जाएगी ताकि अपरिवर्तनीय देशों को भी लुभाया जा सके?भारत में हमारी प्राथमिकता विकास की ऐसी राह तलाशनी है जो प्रदूषण से मुक्त हो। हमें शहरीकरण का ऐसा ढांचा तलाशना होगा जिसमें निजी परिवहन को बढ़ावा देने के बजाय स्वच्छ हवा पर ध्यान हो। इसके साथ ही हमें ऊर्जा संसाधनों से वंचित लोगों को स्वच्छ ऊर्जा प्रदान करने के तरीके भी निकालने होंगे। भारत जैसे देशों के पास यह मौका है कि वे विकास के रास्ते पर अलग तरीके से आगे बढ़ सकते हैं और उन्हें यह मौका जरूर भुनाना चाहिए।लेकिन अमेरिका में ट्रंप के आने से विकासशील देशों में सक्रिय पर्यावरणवादियों के लिए मुश्किलें बढ़ जाएंगी। भूमंडलीकरण के खिलाफ संरक्षणवादी एजेंडा अपनाया जाएगा और सभी को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा कि कोयले के आखिरी टुकड़े तक को खोद कर जला दिया जाए। लोगों को यह समझाने की कोशिश की जाएगी कि जलवायु परिवर्तन भविष्य की समस्या है और उसे अधिक तवज्जो नहीं दी जानी चाहिए। ट्रंप के आगमन से यह साफ हो चुका है कि वह बड़ा और खूंखार भेडिय़ा दस्तक दे चुका है। अब हमारे सामने इस सच्चाई का सामना करने की चुनौती है कि दुनिया पहले से अधिक गर्म हो चुकी है और भविष्य अधिक असुरक्षित है। उसी सूरत में हम परिवर्तन की उम्मीद कर सकते हैं।

Date: 22-03-17

श्रम सुधार अनिवार्य

वर्ष 2012 में मारुति के मानेसर संयंत्र में भड़की हिंसा के बाद, दोषी ठहराए गए 31 में 13 पूर्व कर्मचारियों को आजीवन कारावास दिया गया। कंपनी को शायद लगा हो कि इससे यह प्रकरण खात्मे की ओर बढ़ा है। लेकिन वाहन कारोबार में अग्रणी गुडग़ांव के श्रम संगठनों के बीच लगातार बढ़ते असंतोष से आकलन किया जाए तो यह तय है कि इस मामले में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी। हरियाणा के मानेसर में घटी उस घटना में कंपनी के एक मानव संसाधन प्रबंधक की मृत्यु हो गई थी और कई वरिष्ठ अधिकारी घायल हो गए थे। देश की सबसे बड़ी कार निर्माता कंपनी के लिए हमारी धीमी और चिढ़ पैदा करने वाली न्याय प्रणाली के अलावा भी कई समस्याएं हैं। खासतौर पर विनिर्माण के क्षेत्र में तमाम संकट हैं। उस हड़ताल के चलते मारुति को श्रमिकों की हिंसा के सबसे बुरे घटनाक्रम का साक्षी बनना पड़ा। लेकिन यह इस तरह की पहली घटना नहीं थी। वर्ष 2008 के वित्तीय संकट के बाद से ही देश में श्रमिक हिंसा की वारदात देखने सुनने को मिलती आ रही हैं। देश के श्रम कानून पर्याप्त लचीले नहीं हैं और इसके चलते कंपनियों को कर्मचारियों को रखने या निकालने में कठिनाई होती है। इस वजह से कुछ ऐसा माहौल बना रहता है कि कर्मचारी प्राय: असंतोष में घिरे रहते हैं। पुरातन कानून के मुताबिक 100 से अधिक कर्मचारियों वाली फैक्टरियों में कर्मचारियों को निकालने के लिए सरकारी मंजूरी आवश्यक है जो शायद ही मिलती है। इससे दो तरह का श्रमिक वर्ग तैयार हुआ है। एक संगठित क्षेत्र जिसमें उनको बेहतरीन वेतन मिलता है और रोजगार की पूरी सुरक्षा रहती है। जबकि असंगठित क्षेत्र में आय बहुत कम रहती है। औद्योगिक क्षेत्र की बात करें तो अनुबंधित श्रमिक कुल कामगारों का 46 फीसदी होते हैं और वेतन भत्तों में अंतर दोगुने से अधिक हो सकता है। यही वजह है कि अनुबंधित श्रमिक स्थायी भर्ती की मांग करते हैं और अक्सर मामला इ्क्षहसा तक पहुंच जाता है क्योंकि कंपनी प्रबंधक लागत कम करने के लिए ऐसा नहीं होने देते। मारुति की बात करें तो उसने भले ही 2012 की घटना के बाद अनुबंधित श्रमिकों को कम करने की बात कही हो लेकिन मांग के चलते उनकी संख्या वर्ष 2013-14 और 2014-15 के बीच 61.5 फीसदी तक बढ़ गई। इससे श्रमिक संबंधों में तनाव का जोखिम बढ़ता है। लेकिन इसका संबंध मौसमी मांग से भी है। वाहन उद्योग में उच्चतम मांग और कमजोर मांग के बीच 25 फीसदी तक का अंतर होता है। यह वस्त्र उद्योग जैसे एक अन्य बड़े नियोक्ता के लिए भी समस्या है। संविधान के अधीन श्रम राज्य का मसला है। राज्य सरकारों को श्रम सुधारों को तेजी से अंजाम देना चाहिए। राजस्थान ने इस दिशा में साहसी पहल की

और 100 से 300 कर्मचारियों वाले उपक्रमों के लिए छंटनी की मंजूरी की शर्त खत्म कर दी। लेकिन यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बड़ी फैक्टरियों के लिए नाकाम है। सर्वोच्च न्यायालय ने 2016 में एक ऐतिहासिक निर्णय में कहा था कि ठेका मजदूरों को भी समान काम के लिए स्थायी श्रमिकों के समान ही भुगतान किया जाना चाहिए। ताकि कोई असमानता न रह जाए। इसके आधार पर राज्य सरकारों को औद्योगिक विवाद अधिनियम के अतिरंजित प्रावधानों को समाप्त करना चाहिए। अब जबकि देश के आधे से अधिक राज्यों पर एक दल का शासन है तो अखिल भारतीय बदलाव की संभावना पहले से ज्यादा है। ऐसे वक्त में जबकि बढ़ता स्वचालन तमाम बड़े निवेशकों को अच्छे विकल्प मुहैया करा रहा है तो श्रम सुधारों की आवश्यकता भी पहले से कहीं अधिक है।

दैनिक जागरण

Date: 21-03-17

नदियों को कानूनी अधिकार

उत्तराखंड हाईकोर्ट ने गंगा और यमुना को जीवित व्यक्तियों सरीखे कानूनी अधिकार प्रदान करने का जो फैसला दिया उसने नदियों की महत्ता को नए सिरे से रेखांकित करने का काम किया है। उम्मीद की जानी चाहिए कि इस फैसले से केंद्र सरकार के साथ-साथ सभी राज्य सरकारें भी चेतेंगी और नदियों को साफ-सुथरा रखने के प्रति ईमानदारी के साथ सक्रिय होंगी। यह संभवत: दूसरा ऐसा उदाहरण है जब नदियों को जीवित व्यक्तियों जैसाअधिकार दिया गया है। इसके पहले हाल में न्यूजीलैंड की एक नदी को ऐसा ही अधिकार वहां की संसद ने प्रदान किया है। उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने गंगा और यमुना को जीवित व्यक्तियों जैसे कानूनी अधिकार प्रदान करते हुए गंगा प्रबंधन बोर्ड बनाने का भी निर्देश दिया। उसने यह भी स्पष्ट किया कि इन नदियों को अतिक्रमण से बचाने और उन्हें साफ-सुथरा रखने में आनाकानी करने वाले राज्यों के साथ केंद्र सरकार सख्त कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र होगी। फिलहाल यह कहना कठिन है कि नैनीताल हाईकोर्ट के इस फैसले का असर किस रूप में और कब तक देखने को मिलेगा, क्योंकि इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अतीत में न्यायपालिका के तमाम हस्तक्षेप और आदेश-निर्देश के बाद भी गंगा एवं यमुना के साथ-साथ देश की अन्य अनेक महत्वपूर्ण नदियां उपेक्षित ही हैं। वे प्रदूषण के साथ अतिक्रमण का भी शिकार हैं। कुछ नदियों की गंदगी तो इस हद तक बढ़ती जा रही है कि उनका पानी पीने लायक तो दूर रहा, सिंचाई के लिए भी उपयुक्त नहीं रह गया है। गंगा और यमुना महज नदी नहीं हैं। वे देश की संस्कृति की प्रतीक एवं पर्याय हैं। एक विशाल आबादी के लिए वे जीवनदायिनी भी हैं और आस्था का केंद्र भी। आवश्यक केवल यह नहीं है कि नदियों के अविरल प्रवाह की चिंता की जाए, बल्कि यह भी है कि उनके पारिस्थितिकी तंत्र को सहेजने की कोशिश की जाए। बिना ऐसा किए नदियों के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक महत्व को बचाए रखना मुश्किल होगा। यह समझना कठिन है कि गंगा और यमुना के जल का दोहन इस तरह क्यों नहीं किया जा सकता कि उनके पारिस्थितिकी तंत्र को कोई नुकसान न पहुंचे? इस पर आपत्ति नहीं कि बिजली के लिए उत्तराखंड में नदियों पर बांध बनें, लेकिन इसका कोई ठोस आकलन होना ही चाहिए कि आखिर एक छोटे राज्य को कितने बांधों की आवश्यकता है? आर्थिक लाभ की चिंता वहीं तक की जानी चाहिए जहां तक नदियों की जीवनदायी क्षमता पर विपरीत असर न पड़े। गंगा और यमुना को प्रदूषण के साथ-साथ अतिक्रमण से बचाने की पहल इस रूप में होनी चाहिए कि उनका प्रवाह बाधित न होने पाए। इससे संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि गंगा और यमुना को साफ-सुथरा रखना संबंधित राज्य सरकारों के साथ-साथ केंद्र सरकार की भी प्राथमिकता में है, क्योंकि जो वादे किए गए थे वे पूरे होते नहीं दिख रहे हैं। यह तब है जब केंद्र सरकार के साथ ग्रीन ट्रिब्यूनल भी इसके प्रति सजग है कि गंगा और यमुना को साफ-सुथरा रखने का लक्ष्य पूरा हो। स्पष्ट है कि गंगा एवं यमुना सरीखी नदियों को बचाने के मामले में केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि केंद्र और राज्य सरकारों की ओर से संकल्पशक्ति का प्रदर्शन किया जा रहा है।

THE HINDU

Date: 21-03-17

Framing the right prescription

Strategic shifts are needed in the level of government control on the financing and provision of health

India spends close to 5% of its GDP on health. While this may appear low when compared to 18% of the U.S., data show that Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD) countries spend 8-11%, middle-income countries close to 6%, and India's peers, the lower-middle-income countries 4.5%. By these measures, India's health-care spending, while still somewhat low, is not unusually so. However, on an index measuring country performance on the health-related Sustainable Development Goal (SDG) indicators, India ranks poorly at 143 out of 188 countries.

If we look in terms of Purchasing Power Parity (PPP), a measure that more accurately corresponds with our actual standard of living, India is the third largest economy in the world, at almost PPP $8 trillion. Given the large size of our population, our 5% allocation to health translates to a mere $267 per individual, a number far lower than the OECD average of $4,698. Yet, countries with comparable or even lower per capita health expenditures, including Indonesia, Thailand, and Ghana, are ranked better on the SDG Index at 91, 112, and 141, respectively, out of 188, and offer us hope and a few lessons.Interestingly, two of the most important differences between India and these countries are the extent of pooling of health expenditures and the level of government control of the health system.

Pooling of expenditure

First is the pooling of health expenditure: India has among the lowest pooled expenditure for health care; between 2004-2014, approximately 4-7% of households fell below the poverty line as a result of high out-of-pocket expense. Pre-payment and pooling of resources are critical to ensure financial protection against catastrophic health shocks. The extent of pooling is determined by the government's tax allocation to health and insurance coverage in the country. India's low tax to GDP ratio and allocations of around 5% of general government expenditure to health impact the total quantum of funds available. Countries such as Thailand which have a comparable tax to GDP ratio have prioritised health within their budgets and allocate 13% of it to health care. To increase pooled funds for health care, India needs to both provide a significantly higher level of allocation to health care in its annual Budgets, as in Thailand, as well as extend schemes such as the Employees' State Insurance Scheme (ESIS) — currently a mandatory insurance scheme only for low-wage earners in the formal sector in India — to all employees. Gradually the informal sector, both in upper and lower income, can be included by making it mandatory for all residents to buy into national or state health insurance schemes as has been successfully done in Kyrgyzstan, China, and South Korea.

Government control

Second is the control exercised by the government on the health system: Successful health systems, the world over, including in entirely free market developed economies such as Germany, Switzerland, South Korea, and Japan, do not necessarily have the government as a provider. Nevertheless, they all have a high degree of direct government control on the services that are offered; the pricing of health services, referral pathways, and treatment protocols that are followed. Governments such as those of Japan and Switzerland exercise direct price controls on services like how much physicians and hospitals may charge. Similar to the control in some mandated drug pricing, setting a price control on what hospitals and physicians may charge for their services, are critical elements that India may consider. The other area could be instituting licensing processes for hospitals, similar to the Certificate of Need process in the U.S., which can help a regionally-equitable distribution of hospitals by incentivising the setting up of facilities in poorly served areas.

It is clear that significant, strategic shifts in the level of control that the government exerts on both the financing and provision of health are urgently required. India can build on learning from core design principles from global experiences, including prioritising resources for health within government budgets, pooling existing resources, and greater government control over the health sector. It can also allow for a customised approach based on its context. Such a path will allow India to deliver on quality health care and equitable health outcomes to all of its people.

Saachi Bhalla and Nachiket Mor are with the Bill & Melinda Gates Foundation's India Office. The views expressed are personal

---

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 21-03-17

गंगा-यमुना को छेड़ा तो जेल, नैनीताल हाईकोर्ट का ऐतिहासिक फैसला

नैनीताल हाईकोर्ट ने ऐतिहासिक फैसले में सोमवार को गंगा और यमुना नदी को वैधानिक व्यक्ति का दर्जा दिया। यानी इन दोनों नदियों को क्षति पहुंचाना किसी इंसान को नुकसान पहुंचाने जैसा माना जाएगा। ऐसे में आईपीसी के तहत मुकदमा चलेगा और व्यक्ति को जेल भी संभव है।जस्टिस राजीव शर्मा और न्यायमूर्ति आलोक सिंह की खंडपीठ ने यूपी और उत्तराखंड की परिसंपत्तियों के बंटवारे से संबंधित जनहित याचिका पर निर्देश जारी किए। यह याचिका देहरादून निवासी मोहम्मद सलीम ने दायर की थी। गंगा-यमुना को दिए गए अधिकार का उपयोग तीन सदस्यीय समिति करेगी। यानी यह समिति इन नदियों को क्षति पहुंचाए जाने से संबंधित सभी मुकदमों की पैरवी करेगी। इसमें उत्तराखंड के मुख्य सचिव, नैनीताल हाईकोर्ट के महाधिवक्ता और नमामी गंगे प्राधिकरण के महानिदेशक शामिल किए गए हैं।

न्यूजीलैंड की नदी नजीरः

मोहम्मद सलीम की ओर से वरिष्ठ वकील एमसी पंत ने गंगा-यमुना की खराब दशा बताते हुए न्यूजीलैंड में नदी को जीवित प्राणी का दर्जा देने का भी हवाला दिया। उनकी दलील पर कोर्ट ने गंगा-यमुना को भी जीवित प्राणी का दर्जा देने के निर्देश दिए। पंत ने बताया कि कोर्ट के पास किसी को भी वैधानिक व्यक्ति का दर्जा देने का अधिकार है। इसी आधार पर गंगा-यमुना को यह दर्जा दिया गया है।वरिष्ठ अधिवक्ता संजय भट्ट ने बताया कि अभी तक गंगा में प्रदूषण को रोकने के लिए वाटर प्रोटेक्शन एंड कंट्रोल ऑफ पॉल्यूशन एक्ट के तहत कार्रवाई होती थी। इसके अलावा अब गंगा-यमुना पर भी मुकदमा दर्ज किया जा सकेगा।

महत्व को समझे

दुनिया का हर बारहवां व्यक्ति गंगा के किनारे रहता है 20 लाख लोग औसतन प्रति दिन गंगा स्नान करते हैं, त्योहारों पर यह संख्या करोड़ों हो जाती है

भविष्य को जानें

40 गज प्रति वर्ष की दर से सिकुड़ रहा गंगोत्री का ग्लेशियर 2030 तक गंगोत्री ग्लेशियर के विलुप्त होने की आशंका

और इसे सुधारें

80 फीसदी गंगाजल सिंचाई के लिए मोड़ दिया जाता हैअकेले हरिद्वार में 8.9 करोड़ लीटर और पटना में 1.1 करोड़ लीटर सीवेज का बड़ा हिस्सा गंगा में जाता हैयमुना में 80 फीसदी प्रदूषण दिल्ली के 22 किलोमीटर के दायरे में होता है

जनसत्ता

Date: 21-03-17

बुजुर्गों की सुध

यह स्वागतयोग्य है कि केंद्र सरकार अगले शनिवार यानी पच्चीस मार्च से बुजुर्गों के लिए राष्ट्रीय वयोश्री योजना शुरू करने जा रही है। पहले इसे जनवरी में शुरू किया जाना था, लेकिन पांच राज्यों में चुनाव आ जाने के कारण इसे मुल्तवी करना पड़ा। पिछली जनगणना के मुताबिक देश में करीब साढ़े दस करोड़ वृद्ध हैं। इनमें 5.2 फीसद बुजुर्गों की स्थिति शारीरिक रूप से काफी दयनीय है, क्योंकि वे कई तरह की अवस्थाजन्य कमजोरियों के शिकार हैं। कोई चलने में असमर्थ है तो कोई सुनने में। किसी की दृष्टि कमजोर हो गई है तो कोई विकलांग है। केंद्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय ने योजना का विस्तृत मसविदा तैयार किया था, जिस पर मंत्रिमंडल की मुहर लग चुकी है। मंत्रालय ने पिछले दिसंबर में सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को पत्र लिख कर लाभार्थियों की पहचान करने और उनकी सूची तैयार करने के लिए कहा था। मंत्रालय की ओर से कहा गया कि फिलहाल यह योजना गरीबी रेखा से नीचे के बुजुर्गों के लिए लागू की जाएगी।

मोटे तौर पर इस योजना का मकसद वृद्धों को जरूरी उपकरण मुहैया कराना है। इसमें आरामदायक जूते, बैसाखी, कृत्रिम दांत, व्हीलचेयर, श्रवणयंत्र, चश्मा आदि सहायक यंत्र जरूरतमंदों को मुफ्त दिए जाएंगे। निस्संदेह यह योजना कई कारणों से बहुत जरूरी थी। जिस तरह देश में बुजुर्गों की दुर्दशा बढ़ रही है और वे परिवारों में भी उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं, उसमें सरकार का आगे बढ़ कर मदद करना जरूरी हो जाता है। आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों में तो वृद्धों की बदहाली है ही, कई बार तो संपन्न घरों में भी वे अपने ही बाल-बच्चों की तरफ से उपेक्षा और तिरस्कार के शिकार होते हैं। देश में ऐसे वृद्ध लोगों की संख्या बहुत बड़ी है, जिनके पास पेंशन या किसी अन्य किस्म की कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं है, खासकर किसानों, मजदूरों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों की लाचारी किसी से छिपी नहीं है। परिवारों में गरीबी की मार सबसे ज्यादा बूढ़ों पर ही पड़ती है। उनका इलाज कराना हो या उनके लिए कुछ खरीद-फरोख्त करना हो तो मान लिया जाता है कि उनकी प्राथमिकताएं और जरूरतें बेमानी हैं।

उनके साथ ऐसे व्यवहार किया जाता है, जैसे वे परिवार के लिए बोझ हों। ऐसी स्थिति में अगर सरकार ने उनके लिए थोड़ी-बहुत इमदाद पहुंचाने की सोची है, तो यह सराहनीय है। लेकिन जैसा कि सामाजिक कल्याण एवं अधिकारिता मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने बताया है कि हर राज्य के दो जिलों में ही शिविर लगाए जाएंगे और हर शिविर में सिर्फ दो हजार लोगों को उपकरण बांटे जाएंगे। इसका मतलब है कि हर राज्य में सिर्फ चार हजार लोगों को लाभार्थी माना जाएगा। अगर इस योजना की कुल गहमागहमी का इतना भर ही नतीजा है तो यह एक प्रतीकात्मक कार्यक्रम भर होकर रह जा सकती है। सरकार ने अगर नेक काम में कदम बढ़ाया है तो फिर कृपणता क्यों! विडंबना यह है कि श्रेय लेने की उतावली और विज्ञापनबाजी में सरकार को पैसा फूंकना हो, तो उसके लिए पैसे की कोई तंगी नहीं होती, मगर कल्याणकारी कार्यक्रमों की बाबत अक्सर पैसे का टोटा हो जाता है!